जैन धर्म और लोकतन्त्र

□ प्रो० चन्द्रसिंह नेनावटी

(राजनीति विज्ञान विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर)

'मित्ती मे सव्वभूएसु' ये शब्द 'जैन प्रतिक्रमण' में युग-युग से चले आ रहे नियमित चिन्तन-मनन के लिए प्रतिष्ठित रहे हैं। सब प्राणियों के प्रति उदात्त मैत्री-भाव रखने वाले व्यक्तियों से सभी नागरिकों की समानता में सहज विश्वास की आशा करना स्वाभाविक है। यही समानता की भावना लोकतन्त्र की आधारशिला है। समानता स्वतन्त्रता की भगिनी है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति (१७८९) में लोकतन्त्र का कण्ठस्वर "स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुता" ऐसे ही नारों में गूँजा था। अमेरिका में टॉमस पेन (Thomas Paine) ने 'विवेक का युग' (१७९३) में लिखा था : "मैं मनुष्य की समानता में विश्वास करता हूँ; और मेरा विश्वास है कि न्याय करने, प्रेमपूर्ण दया, और अपने साथी प्राणियों की प्रसन्नता के लिए प्रयत्न में धार्मिक कर्त्तव्य निहित हैं।"[1] समानता में आस्था रखने वाला व्यक्ति धर्म, मूलवंश, (Race), जाति, लिंग, जन्म-स्थान इत्यादि के आधार पर भेद-भाव नहीं मानता। वह 'मनसा-वयसा, कायसा' समानता का आचरण करता है। यह जैन-सन्देश है; यह लोकतन्त्र का भी निर्देश है। महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' में सन् १९२१ ई० में लिखा था; "मेरा धर्म बंदीगृह का नहीं है। इसमें परमात्मा के छोटे से छोटे प्राणी के लिए स्थान है, किन्तु यह मूलवंश, धर्म और वर्ण (रंग) के दुराग्रही अभिमत से प्रभावित नहीं होता।"

समानता की यह भावना जैन धर्म और दर्शन में आधारभूत रूप से बहुत गहरी ही नहीं, व्यापक भी रही है। वस्तुतः उसे 'समता' का सिद्धान्त कहना उपयुक्त होगा। समता की दृष्टि व्यक्ति के व्यक्तित्व को सन्तुलित और शान्त रखती है; वह समाज को भी समरसता, सहानुभूति और सुख-शान्ति प्रदान करती है। मनुष्य-मनुष्य में अन्तर जैन सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। कोई भी हो, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र के मार्ग से मोक्ष प्राप्त कर सकता है; उसके लिए जाति, धर्म, भाषा आदि के भेद की मान्यता नहीं है। जैन दर्शन का समत्व तो प्राणी मात्र तक प्रसारित है, सीमित या संकुचित नहीं।

लोकतन्त्र में जिस समानता की बात कही जाती है, वह सभी प्राणियों तक नहीं तो भी सब नागरिकों तक अवश्य व्याप्त होती है। राजनीतिक समानता में 'एक व्यक्ति, एक वोट' का सिद्धान्त नागरिकों की बराबरी पर ही आधारित है। वह युग बीत चुका है जबकि कतिपय तथाकथित लोकतन्त्रात्मक राज्यों में शिक्षा या संपत्ति आदि के नाम पर मताधिकार सीमित रखा जाता था और कुछ वर्गों को एक ही निकाय के लिए चुनाव में एक से अधिक वोट देने का अधिकार होता था। इंग्लैंड में बहुल मतदान (Plural Voting) की उस कोटि में अन्तिम अवशिष्ट उदाहरण था विश्वविद्यालय-मताधिकार (University Franchise), जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय शैक्षिक उपाधिधारियों

1 "I believe in the equality of men; and I believe that religious duties consist in doing justice, loving mercy, and endeavouring to make our fellow creatures happy."

—*Thomas Paine* : The Age of Reason.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को सबके साथ वोट देने के सिवाय भी एक बार और अलग से वोट देने का अधिकार होता था; किन्तु वह भी अब तो राजनीतिक इतिहास के पृष्ठों में विलीन हो चुका है। स्त्री-पुरुष के अधिकारों की असमानता भी अब समाप्त-प्राय है। यह सही है कि कई जगह इसके लिए बड़े आन्दोलनों की आवश्यकता पड़ी। स्त्रियों को इंग्लैण्ड में भी बहुत संघर्ष के पश्चात् ही मताधिकार प्राप्त हो सका। फ्रांस जैसे लोकतन्त्रात्मक राज्य में भी बहुत बाद—द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के समय में ही—महिलाओं को मतदाताओं की पंक्तियों में स्थान मिल सका। लोकतन्त्र का घर माने जाने वाले देश स्विट्जरलैंड में तो महिला-मताधिकार अभी कुछ वर्ष पहले ही प्राप्त हुआ है। अस्तु, अब तो सभी लोकतन्त्रों में (कतिपय वैधानिक निर्योग्यताओं वाले व्यक्तियों के सिवाय) समान वयस्क मताधिकार की बहार है। इस समानता के सिद्धान्त को ही श्रेय है कि सभी नागरिक—नागरिक होने के नाते से ही—समान माने जाते हैं। आध्यात्मिक समानता की यह एक राजनीतिक परिणति है। जैन दर्शन के आधार पर तो सभी के प्रति समता-पूर्वक मैत्रीभाव की कामना की गई है। बल से किसी प्राणी को अपने अधीन करने का निषेध किया गया है—

सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता
न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, परिघेतव्वा,
न परियावेयव्वा, न उद्वेयव्वा।
एस धम्मे सुद्धे णिइए मासए।

(सर्व प्राणी, भूत, जीव और सत्व हैं, इनका घात मत करो; बलात् किसी को अपने अधीन मत करो; प्रहार मत करो; शारीरिक, मानसिक पीड़ा मत उपजाओ; क्लान्त मत करो; उपद्रव मत करो।[१]

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां, हिंसामन्यस्य नाचरेत्॥ (योगशास्त्र, २।२०)

अर्थात् "ज्यों निज को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, ठीक त्यों ही दूसरों को भी सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है—यह समझकर विवेकी मनुष्य किसी की भी हिंसा न करें।"[२]

इस सैद्धान्तिक समानता का व्यावहारिक रूप क्या हो? एक विचारक का कथन है: "समानता का अभि-प्राय उतना ही भ्रमपूर्ण है जितना यह कहना कि पृथ्वी समतल है।" प्रकृति के द्वारा सबको समान शक्तियाँ नहीं मिली हैं। प्राकृतिक असमानता के अतिरिक्त सामाजिक विषमताएँ भी हमारे बीच में हैं। लोकतन्त्र में समानता का तात्पर्य सामाजिक वैषम्य और प्रकृतिजन्य असमानता के प्रभाव को व्यक्तित्व के विकास में बाधक होने से रोकता है; सभी नागरिकों को अपने विकास के लिए समान अवसर सुलभ हों। प्रोफेसर लास्की ने इसी धारणा को यों व्यक्त किया है:—

"निस्संदेह इसमें (समानता में) मूल रूप में एक समतलीकरण की प्रक्रिया निहित है।…………अतः समानता का सर्वप्रथम आशय है, विशेषाधिकार का अभाव।………… द्वितीयतः, समानता का अर्थ है कि पर्याप्त अवसर सबके लिए खुले हों।"[3]

---

१. जैन तत्त्व संग्रह (प्रथम भाग), पृ० ३९; प्रकाशक—जैन श्वे० ते० महासभा, कलकत्ता।
२. जैन तत्त्व चिन्तन (मुनि श्री नथमल), पृ० ४०, प्रकाशक, आदर्श साहित्य संघ, चुरू।
3. "Undoubtedly, it (equality) implies fundamentally a certain levelling process.........Equality, therefore, means first of all the absence of special privilege.........Equality means, in the second place, that adequate opportunities are laid open to all."
—*Harold J. Laski*: A Grammar of Politics, pp. 153-154.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकतन्त्र में स्वतन्त्रता की जो अनिवार्यता है उसे भी सकारात्मक और सामाजिक सन्दर्भ में ग्रहण करना होता है। प्रो० लास्की के ही शब्दों में पुनः कहना होगा कि स्वतन्त्रता "उस वातावरण को बनाये रखना है जिसमें मनुष्यों को अपने जीवन का सर्वोत्तम विकास करने की सुविधा प्राप्त हो"।[1] अतः स्वतन्त्रता की समस्या का हल भी समानता में ही निहित है।

जैन दर्शन के कर्म सिद्धान्त के प्रकाश में इस समानता और स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्र में मान्य व्यक्ति की गरिमा को स्पष्ट देखा और समझा जा सकता है। अपने ही कर्मों के प्रभाव से व्यक्ति का इहलोक और परलोक बनता है। अपने प्रयास से ही मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। सबके लिए मार्ग और द्वार समान रूप से खुले हैं। सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र के द्वारा वह अग्रसर हो सकता है। जैन दर्शन कर्मफल का नियमन करने का काम किसी बाह्य शक्ति में नहीं मानता। अच्छे-बुरे कर्मों का आत्मा पर संस्कार पड़ता रहता है, वह अदृष्ट है; जब तक उसका फल नहीं मिल जाता, तब तक वह आत्मा के साथ रहता है। यह दर्शन कर्म को स्वतन्त्र द्रव्य मानता है। कर्म अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध हैं। वे जीवात्मा की अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों के द्वारा उससे बँध जाते हैं। कर्म-परमाणुओं का जीवात्मा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कर्म ग्रहण करने में जीवात्मा स्वतन्त्र नहीं होता, परन्तु जीव और कर्म का संघर्ष चलता रहता है। जब जीव के काल आदि की अनुकूल लब्धियाँ होती हैं तब वह कर्मों का क्षय भी कर सकता है। पूर्वजन्मों और इस जन्म में पहले बँधे हुए कर्मों की स्थिति और शक्ति नष्ट करने के लिए तपस्या आदि प्रयास करने का जीवात्मा के पास सदा ही अवसर है; वह स्वविवेक से अवसर का उपयोग करते हुए विकास कर सकता है। यह अवसर की समानता है जिसका लाभ उठा कर व्यक्ति बन्धनों से स्वतन्त्र हो सकता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रतों के पालन से मनुष्य कर्मों को पछाड़ कर चरम विकास की ओर अग्रसर होता है। यहाँ भाग्यवाद नहीं, स्वतः का प्रयास और उसके लिए प्राप्त अवसर की समानता एवं उपयोगिता द्रष्टव्य है। इस प्रकार आध्यात्मिक दर्शन लौकिक नैतिकता में लोकतन्त्र की भित्ति प्रस्तुत करता है।

लोकतन्त्र बहुमत का शासन है। सबका एक मत सामान्यतया हो नहीं सकता किन्तु सबको अपना मत प्रकट करने का अधिकार होना चाहिये। ये मत भिन्न-भिन्न ही नहीं, कभी-कभी परस्पर तीव्र विरोध भरे भी हो सकते हैं। सच्चे लोकतन्त्र की यह भी एक कसौटी है कि विचार चाहे कितने ही भिन्न क्यों न हों, उन्हें प्रकट करने का अवसर सबको मिलना चाहिये। अधिनायकतन्त्र में एक ही विचारधारा में सबको बहना होता है। वहाँ यह होगा कि एक विशेष मत वाले (मतवाले ?) तो हों सत्ता में और अन्य मत वाले हों जेल में। लोकतन्त्र में विरोध और विरोधी का भी स्थान और सम्मान होता है। "निन्दक बपुरा पर उपकारी, 'दादू' निन्दा करे हमारी", लोकतन्त्र के लिए भी यह सन्त-वचन सत्यवचन ही होगा। विरोधी के भाषण गोमक्खी की भाँति तीखे, काटते हुए लग सकते हैं। गोमक्खी के काटने से लोकतन्त्र मरेगा नहीं, क्योंकि प्रभावित अंग की सोजिश को वह सरल हास विवेक से कम करने में समर्थ होता है। यदि कोई लोकतन्त्र ऐसा न कर सके और इसके बजाय हिंसात्मक प्रतिक्रिया प्रदर्शित करे तो समझना चाहिये कि उसके रक्त में कोई विकार है। जब एथेंस में प्राचीन यूनानी लोकतन्त्र ने सुकरात को, उसकी तर्क-शैली और विचार प्रणाली के कारण, विष का प्याला पिलाने का कदम उठाया तो वह स्पष्ट चिह्न था कि उस शासन-प्रणाली के कदम डगमगाने लगे थे; वह विकृत, भ्रष्ट और अवनत हो चुकी थी।

लोकतन्त्र में कई ऐसे अवसर आ सकते हैं कि किसी व्यक्ति या वर्ग का मत सबसे भिन्न हो; परन्तु हो सकता है कि उस अल्पमत की बात में भी सत्य हो या आगे चलकर वह सही साबित हो। इसलिए सबको निर्भय होकर अपना मत रखने का अवसर देना और सहिष्णुतापूर्वक विरोध को समझने-समझाने का सामर्थ्य लोकतन्त्र का बल-सम्बल है। कई बार आज का अल्पमत कल बहुमत सिद्ध हो जाता है। लक्ष्य को या मार्ग को अपनी-अपनी दृष्टि से

1. "By liberty I mean the eager maintenance of that atmosphere in which men have the opportunity to be their best selves." —A Grammar of Politics, p. 142.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखा जा सकता है। मत की विभिन्नता और विचित्रता के वातावरण में भी सन्तुलन बनाये रखना तब सम्भव है जब सहनशीलता का दृष्टिकोण हो। इसके लिए महावीर स्वामी के बताये हुए अनेकान्त और स्याद्वाद की महती उपादेयता है।

महावीर स्वामी के तत्त्वचिन्तन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुणों का पुंज है। सूक्ष्म परमाणु में भी और प्रत्येक जीव में भी अनन्त विशेषताएँ और अनन्त शक्तियाँ हैं। एक ही वस्तु विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न रूप-रंग-युक्त, नित्य-अनत्य, सत्-असत्, एक-अनेक इत्यादि हो सकती है। पदार्थ में परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाली भी कतिपय विशेषताएँ हो सकती हैं। उसकी इस अनेकरूपता को प्रतिपादित करता है अनेकान्तवाद।

वस्तु के अनन्त गुणों के ज्ञान के लिए जिस अनन्तज्ञान की आवश्यकता है उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं। जो ज्ञान की उच्चतम इन्द्रियातीत अवस्था है। इन्द्रियों और शब्दों द्वारा वस्तु का सीमित ज्ञान होता है, जिसमें उसके अनन्त गुणों में से कुछ गुणों का बोध हो सकता है। वस्तु के अनन्त गुणों में से किसी एक गुण का बोध करना नय है। नय की दृष्टि एक समय में किसी एक गुण को ग्रहण करते हुए भी दूसरे गुण को अमान्य नहीं करती। इसके भाषात्मक प्रकटीकरण की शैली को 'स्याद्वाद' कहा गया है। स्याद्वाद 'ही' को पकड़कर बैठने के बजाय 'भी' का प्रयोग करता है। एक पुरुष बहिन की दृष्टि से भाई, पत्नी की दृष्टि से पति, पुत्र की दृष्टि से पिता और पौत्र की दृष्टि से दादा हो सकता है। वह पुरुष भाई ही नहीं है, पति ही नहीं है, पिता ही नहीं है, दादा ही नहीं है; बल्कि वास्तव में वह भाई भी है, पति भी है, पिता भी है, और दादा भी है तथा और भी बहुत-कुछ है। यह प्रश्न लगभग सबने सुना होगा—एक परिवार के दो पिता और दो पुत्र सड़क पर जा रहे हैं; बताइये वे कितने व्यक्ति हैं? इस प्रश्न का उत्तर जिसने 'चार' दिया उसे सही नहीं माना गया और जिसने 'तीन' कहा उसे पूरे अंक मिल गये। क्यों? इसलिए कि दादा, अपने पुत्र और पौत्र के साथ है, उनमें से सबसे अधिक आयु वाले की अपेक्षा जो पुत्र है, वही व्यक्ति सबसे कम आयु वाले की अपेक्षा से पिता है। कहने वालों की अपनी-अपनी अपेक्षा होती है, परन्तु केवल उस 'ही' का आग्रह मतभेद और कलह का कारण बन सकता है। अतः स्याद्वाद आग्रह के स्थान पर समन्वय का प्रेरक है। इसे अपनाने वाला सामने वाले के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करेगा, न कि उसका तिरस्कार। यह बौद्धिक उदारता लोकतन्त्रात्मक कार्य-प्रणाली के लिए अनिवार्य है। व्यक्तियों में अपनी-अपनी 'सूझ' के बजाय किसी एक के विचार की 'गूंज' लोकतन्त्र की सभा को अधिनायकवाद के नक्कारखाने में बदल देगी। तानाशाह यही तो कहते हैं: "ऐ साधारण झुंड वालो! स्वयं के लिए सोचने की शक्ति तुम में नहीं है; वह काम तो असाधारण मनुष्य ही कर सकते हैं। हम हैं असाधारण मनुष्य, हम तुम्हारे लिए सोचने का काम कर लेंगे और तब तुम्हें समझा देंगे कि वह तुम्हारा ही विचार है जो कि हमने तुम्हें बताया है।"[1] जैसे बाजार में मिलने वाले सिले-सिलाये कपड़े 'फिट' कर दिए जाते हैं वैसे ही पके-पकाये विचार भी शिरोधार्य करने पड़े तो ज्ञान-गंगा का प्रवाह अथाह सागर की ओर न बढ़ सकेगा, न चिन्तन की चोटियों पर चढ़कर विश्व-दर्शन का प्रयास कोई तेनसिंह कर पायेगा। फिर तो युग-युग में गेलीलियो दण्डित होता रहेगा; युग-युग में मीरां को यही कहना पड़ेगा "राणा भेज्या जहर पियाला"। न तो कोई मनीषी अपनी अपेक्षा से सत्य का वर्णन कर सकेगा, न कोई आइन्स्टीन सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित कर सकेगा। ऐसे दमघोटू 'लोकतन्त्र' से तो संभवतः लोग 'परलोकतन्त्र' को ही बेहतर मानने लगें। इसलिए सच्चा जनतन्त्र तो वैचारिक स्वातन्त्र्य में ही पनप सकता है। स्याद्वाद उसके लिए प्राणदायी पर्यावरण प्रस्तुत करता है।

अपनी पूर्णता और सफलता के लिए लोकतन्त्र एक और महान् योगदान जैन धर्म से ग्रहण कर सकता है;

1. "You, the common herd, are not capable of thinking for yourselves, it is only uncommon men who can do that. We are uncommon men, and we will do the thinking for you, and then persuade you that you have thought for yourselves what we tell you to think."
—*Charleton Kemp Allen*: Democracy & the Individual, p. 52.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह है अपरिग्रह। मनुष्य के मनुष्य द्वारा शोषण के आर्थिक साधनों और आर्थिक विषमता के कारण लोकतन्त्र वास्तविक समानता से वंचित रह जाता है। इसी आधार पर सोवियत संघ और अन्य साम्यवादी देशों के नेता फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका आदि पाश्चात्य लोकतन्त्रों को 'कोरा' और 'खोखला' बताते हैं। आर्थिक समानता राजनीतिक समानता की पूरक है। इसीलिए समाजवादी जनतन्त्र की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। यदि आवश्यकताओं को सीमित रखने और संग्रहवृत्ति को त्यागने का धर्मोपदेश जीवन-व्यापार में चरितार्थ हो जाये तो व्यक्ति और समाज के हितों में तादात्म्य स्पष्ट लक्षित होगा। अपरिग्रह का अस्तेय से और इन दोनों का जनतन्त्र की रीति-नीति से चारित्रिक सम्बन्ध है।

लोकतन्त्र में एक और विशेष आवश्यकता है जो साध्य के लिए प्रयुक्त होने वाले साधनों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। उसके लिए अहिंसा हमें मार्ग दिखाती है। सत्ता-प्राप्ति के लिए प्रतियोगिता राजनीति की एक वास्तविकता है। अन्य किसी पद्धति में चाहे षड्यन्त्र, हत्या आदि को स्थान प्राप्त हो, लोकतन्त्र में तो सत्ता-हस्तान्तरण लोकमत से ही किया जाता है जो सामान्यतया नागरिकों के गोपनीय मतदान से निर्णयिक रूप में प्रकट होता है। जैन दर्शन में अहिंसा का बड़ा व्यापक अर्थ है; उसकी विशद व्याख्या की चर्चा में यहाँ प्रवेश नहीं करें तो भी यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि लोकतन्त्र में हिंसात्मक साधनों के लिए न कोई आवश्यकता होनी चाहिये, न कोई स्थान।

अन्त में यह स्मरण रखना होगा कि धर्म केवल उपदेश के लिए नहीं होता; लोकतन्त्र केवल भाषण के लिए नहीं होता। धर्म केवल उपासना गृहों के लिए नहीं होता; लोकतन्त्र केवल सत्ता-संस्थानों के लिए नहीं होता। जैसे यह कहा जाता है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वैसा ही कथन लोकतन्त्र के लिए भी उपयुक्त होगा। धर्म जीवन की सम्पूर्ण धारा के साथ चिरप्रवाही है। लोकतन्त्र भी केवल शासन की एक प्रणाली ही नहीं, एक विचार पद्धति, एक सामाजिक व्यवस्था और जीवन जीने की विधि भी है। जीवन के कार्य-कलाप में लोकतान्त्रिक रीति को तिलांजलि देकर शासन में लोकतान्त्रिक पद्धति को देखना मृगतृष्णा के समान ही है। जैसे जीवन के पृथक्-पृथक् खण्ड नहीं किये जा सकते क्योंकि वह समग्र और सम्पूर्ण है, वैसे ही लोकतन्त्र को भी व्यापक रूप में ग्रहण करना होगा; और तब स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म में प्रतिपादित उच्च सिद्धान्त लोकतन्त्र को अनुप्रेरित और अनुप्राणित करने की सहज क्षमता रखते हैं। हर्नशा (Hearnshaw) का कथन स्मरण हो जाता है कि लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्त का चरित्र अनिवार्यतः धार्मिक है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org